कर्मवाद के आधारभूत सिद्धान्त

☐ युवाचार्य डॉ. शिवमुनि

ज्ञान एक महान् निधि है, जिसका हमें ज्ञान तो है किन्तु अनुभव नहीं है, इसके बीच में एक रुकावट है; जिसे जैन दर्शन में कर्म कहा गया है।

जितनी भी रुकावटें होती हैं, आवरण होते हैं, वे निर्जीव होते हैं, क्योंकि कर्म एक निर्जीव तत्त्व है। अनेक सन्तों, ऋषियों एवं महर्षियों ने इन्हीं आवरणों को दूर करने के लिये प्रयत्न किया है।

इन आवरणों से छुटकारा पाना ही सब का एकमात्र लक्ष्य है। कोई इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं, कोई लक्ष्य प्राप्त करने के समीप होते हैं। लेकिन ज्ञान को सही रूप में जब तक जाग्रत नहीं किया जायेगा, तब तक आवरणों से मुक्ति नहीं मिल सकती। कौन छूटेगा ? किससे छूटेगा ? इन प्रश्नों का समाधान आवश्यक है। इसीलिए भगवान् महावीर ने "पढमं नाणं" का सूत्र दिया है। जिसका अर्थ है प्रथम ज्ञान।

यह समझने की चेष्टा होनी चाहिए कि कर्म क्या है ? भगवान् महावीर इस समझने के प्रयत्नों को ज्ञान कहते हैं। अज्ञानी कौन है ? जिसमें यह समझ नहीं है।

आवरण के परमाणु जब तक आत्मा को आच्छन्न किये रहते हैं, तब तक वह परवश रहती है। हमारे चारों ओर जो परमाणुओं का जाल है, वही कर्म-जाल है। इस आवरण के मूल कारणों को इस कर्म-जाल के वास्तविक कारण को समझ लेना ही कर्मों से मुक्त होने का प्रथम सूत्र है।

कर्म परमाणुओं की भी अपनी एक शक्ति होती है। जैसे-जैसे कर्म हम करते हैं, वे कर्मपरमाणु क्रिया के आरंभ से ही अपने स्वभाव के अनुसार चलने लगते हैं। अपने स्वभाव के अनुसार कार्य ही कर्म का फल है। कुछ लोग कर्मफल के विषय में ईश्वर को कर्ता मानते हैं, पर यह सिद्धान्त सही प्रतीत नहीं होता है। जब भगवान् स्वयं कर्मों से रहित है तो फिर वह किसी के कर्मफल के झमेले में क्यों पड़ेगा ? गीता में इस विषय पर बड़ा ही सुन्दर विवेचन मिलता है।

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लेकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं, स्वभावस्तु प्रवर्तते॥" (गीता)

हे अर्जुन ! न मैं कर्म करता हूँ, न ही संसार को बनाता हूँ। जीवों को उनके कर्म का फल भी नहीं देता हूँ। इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है, वह स्वभाव से ही हो रहा है, इससे स्पष्ट होता है कि भगवान् न तो संसार का निर्माण करते हैं और न कर्मों का फल ही देते हैं। कर्म एक प्रकार की शक्ति है और आत्मा भी अपने प्रकार की एक शक्ति है। कर्म

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा करता है। जो कर्म आत्मा ने किये हैं वे अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उसे फल देते हैं। इसमें किसी भी न्यायाधीश की जरूरत नहीं है।

हमारे आत्मप्रदेशों में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पांच निमित्तों से हलचल होती है। जिस क्षेत्र में आत्मप्रदेश है, उसी क्षेत्र में कर्म रूप पुद्गल जीव के साथ बंध जाते हैं। कर्म का यह मेल दूध और पानी जैसा होता है। कर्म-ग्रन्थ में कर्म का लक्षण बताते हुए कहा गया है—

"कीरह जिएण हेउहिं जोणंतो भण्णए कम्म"

अर्थात् कषाय आदि कारणों से जीव के द्वारा जो किया जाता है वही कर्म है।

कर्म दो प्रकार के होते हैं—एक भाव-कर्म और दूसरा द्रव्य-कर्म। आत्मा में राग द्वेष आदि जो विभाव हैं वे विभाव भावकर्म हैं। कर्मवर्गणा के पुद्गलों के सूक्ष्म विकार द्रव्य-कर्म कहलाते हैं। भावकर्म का कर्ता उपादान रूप से जीव है, भावकर्म में द्रव्यकर्म निमित्त होता है। और द्रव्यकर्म में भाव कर्म निमित्त होता है। इस प्रकार द्रव्य कर्म और भाव कर्म दोनों का परस्पर बीज और अंकुर की भाँति कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध है।

संसार में जितने भी जीव हैं आत्मस्वरूप की दृष्टि से वे सब एक समान हैं। फिर भी वे भिन्न-भिन्न अनेक योनियों में, अनेक स्थितियों में, शरीर धारण किये हुए हैं। एक अमीर है, दूसरा गरीब है। एक पंडित है तो दूसरा अनपढ़ है। एक सबल है तो दूसरा निर्बल है। एक ही मां के उदर से जन्म लिये युगल बालकों में अन्तर देखा जाता है। कर्म ही इस विचित्रता के मूल में कारण है। जिस प्रकार सुख-दुःख का अनुभव होता है उस प्रकार का अनुभव कर्म के सम्बन्ध में दृष्टिगोचर नहीं होता।

जैन दर्शन में कर्म को पुद्गल रूप माना गया है। इसलिए वह साकार है, मूर्त है। कर्म के कार्य भी मूर्त्त हैं। कारण यदि मूर्त्त होता है तो कार्य मूर्त्त ही होगा यह सिद्धान्त है। उदाहरण के लिए कारण रूप मिट्टी मूर्त्त है तो कार्य रूप घड़ा भी मूर्त्त ही होता है। यदि कारण अमूर्त्त है, तो कार्य भी अमूर्त्त ही होगा। ज्ञान का कारण आत्मा है, यहाँ ज्ञान और आत्मा दोनों ही अमूर्त्त हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि मूर्त्त कर्मों से दुःख सुख आदि अमूर्त्त तत्त्वों की उत्पति किस प्रकार संभव है ?

सुख दुःख आदि हमारी आत्मा के धर्म हैं और आत्मा ही उनका उपादान कारण है। कर्म तो केवल सुख दुःख में निमित हैं। अतः जो कुछ उपर्युक्त कर्म के विषय में कहा गया है, वह इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है।

यह प्रश्न भी विचारणीय है कि कर्म तो मूर्त्त हैं और आत्मा अमूर्त्त है, फिर दोनों का मेल किस प्रकार संभव है, अमूर्त्त आत्मा पर कर्म किस प्रकार प्रभावी हो सकता है ? जिस प्रकार प्रत्यक्ष दिखने वाली मूर्त्त मदिरा का पान करने पर आत्मा के अमूर्त्त ज्ञान आदि गुणों पर स्पष्टतः प्रभाव पड़ता है, ठीक उसी प्रकार मूर्त्त कर्मों का अमूर्त्त आत्मा पर प्रभाव पड़ता है।

चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीय दर्शन कर्म सिद्धान्त के समर्थक हैं। जीव अनादिकाल से कर्मों के वशीभूत होकर अनेक भव-भ्रमण करता चला आ रहा है। जीवन और मरण दोनों की जड कर्म हैं। इस संसार में सबसे बड़ा दुःख जन्म और मृत्यु ही है। जो जैसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म करता है उसका वैसा ही फल मिलता है। कर्म स्वसम्बद्ध होता है, पर सम्बद्ध नहीं अर्थात् एक प्राणी पर दूसरे के कर्म फल का प्रभाव नहीं होता।

अन्य दर्शनों की अपेक्षा जैन दर्शन में कर्म का विशेष रूप से विवेचन प्राप्त होता है। यही कारण है कि कर्मवाद जैन दर्शन का एक विशिष्ट अंग बन गया है।

यहाँ जैन दर्शन में प्राप्त कर्मवाद के आधारभूत सिद्धान्त निम्नांकित रूप से उद्धृत किये जाते हैं—

१. प्रत्येक क्रिया फलवती होती है। कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होती है।

२. कर्म का फल आज नहीं मिलता तो भविष्य में निश्चित ही मिलता है।

३. जीव ही कर्म का कर्ता एवं कर्म का भोक्ता है। कर्म के फल को भोगने के लिए ही जीव एक भव से दूसरे भव में गमन करता है। कर्मबन्धन की इस परम्परा को तोडना भी जीव की शक्ति के अन्तर्गत है।

४, व्यक्ति-व्यक्ति में भेद का कारण कर्म ही है।

आत्मा की अनन्त शक्ति पर कर्मों का आवरण छाया हुआ है जिसके कारण हम अपने आपसे परिचित नहीं हो पा रहे हैं। इन कर्मों से हम तब ही मुक्त हो पायेंगे जब हमें अपनी शक्ति का पूरा परिचय और भरोसा हो जायेगा।

□□

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org